प्रकरण १

काव्य का स्वरुप

❖❖❖

साहित्यशास्त्र में 'काव्य' शब्द का प्रयोग बडे व्यापक एवं गहरे अर्थ मे होता है। वह हमारे भावों का उदात्तीकरण कर रसानुभूति से मन को आनंद की सीमा तक ले जाता है। उसका स्वरुप बहुत व्यापक है। उनके अनेक पहलुओं को पष्ट किए बिना उसका स्वरुप नहीं समझ सकते। काव्य मानवी जीवन की असफलताओं और निराशा को आशा में परिवर्तित करता है। मनीषियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को जीवन मे उतार देने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। किसी देश, जाति और युग की सीमा को पार कर समस्त मानवता को प्रभावित करने की क्षमता वह रखता है, और जीवन को सदा प्रेरित करता रहता है। उन्हीं के प्रभाव से मानव का मन-मस्तिष्क शुद्ध विचारों का वाहक बन जाता है। काव्य जीवन को एक नयी दृष्टि और नयी दिशा देता है। इस तरह काव्य और जीवन का संबंध परस्पराश्रित तथा परस्पर प्रभावक है।

काव्य और साहित्य पर्यायवाची शब्द है। उनमे कोई सैद्धांतिक भेद नहीं है। 'काव्य' के लिए 'साहित्य' शब्द का प्रयोग लगभग ईसा की आठवी-नवमी शती के बाद माना जाता है। आचार्य कुंतक, राजशेखर आदि के द्वारा 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ में ही हुआ है। 'काव्य' कविता का भी पर्यायी शब्द है। प्रबंध-काव्य, छायावादी काव्य, प्रगतिवादी काव्य, प्रयोगवादी काव्य, गीति-काव्य आदि प्रसंगों में प्रयुक्त काव्य का अर्थ कविता की ओर संकेत करता है। मध्यकाल में 'साहित्य' के लिए 'वाङ्मय' शब्द पाया जाता है। वर्तमान काल में 'साहित्य' शब्द 'काव्य' के लिए रुढ हुआ है। साहित्य में गद्य, पद्य, दृस्य काव्य (नाटक) उपान्यास, कहानी, निबंध, समीक्षा आदि विधाओं का समावेश होता है।

साहित्य का सम्बन्ध जीवन से है, और जीवन अनादि अनंत काल से प्रवाहमान एवं परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशील जीवन की व्याख्या करना जितना मुश्किल है उतना ही मुश्किल साहित्य की परिभाषा करना, उसका स्वरुप विश्लेषण कर उसे परिधि में बांधना है। उसके स्वरुप-निरुपण के लिए प्रत्येक युग के मनीषियों ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है; फिर भी वे काव्य (साहित्य) का स्वरुप निर्धारण नहीं कर सकते है; क्योंकि काव्य का स्वरुप बहुत गहरा एवं सूक्ष्म है। आदिकाल से आज तक उसका स्वरुप निर्धारण का प्रयत्न होता रहा है; परंतु काव्य का विकसनशील रूप लक्षणों और परिभाषाओं की सीमा से परे

ही रहा है। कोई भी परिभाषा काव्य का स्वरूप निर्धारण में पर्याप्त नहीं है। किसी मे अति व्यापकता का दोष है तो किसी में अपूर्णता का।

संस्कृत आचार्यो, अंग्रेजी तथा हिंदी के कतिपय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत काव्य की परिभाषा और स्वरुप निरुपन का विवेचन है। जिन्होंने अपने समय के काव्य-मानदंडो को ध्यान मे रखकर साहित्य को परिभाषित कर लक्षण निर्धारण का प्रयास किया है। साहित्य के अनेक लक्षण विद्वानों ने प्रस्तुत किए है। साहित्य का (काव्य का) स्वरूप यद्यपि इन लक्षणों में बंध नहीं पाता फिर भी इन लक्षणों के अभ्यास से साहित्य के स्वरुप को समझा जा सकता है। कवि की रचना काव्य कही गई है और काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई है। काव्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत करने के पहले यह देखना आवश्यक है कि श्रेष्ठ परिभाषा के लक्षण क्या है? श्रेष्ठ परिभाषा अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और अन्य दोषों से मुक्त, संक्षिप्त और सरलभाषा से युक्त एवं पारिभाषिक शब्दावली से रहित होनी चाहिए। अत्यंत उपयुक्त काव्य-परिभाषाओं के आधार पर ही काव्य के लक्षणों को और कुछ हद तक उसके स्वरुप को जाना जा सकता है।

संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रस्तुत काव्य की परिभाषाएँ (काव्यलक्षण) :

संस्कृत के अनेक आचार्योंने काव्य की परिभाषाएँ दी है। इनके कुछ काव्य-परिभाषाएँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती है। काव्य का स्वरुप विश्लेषण संस्कृत में सर्वप्रथम भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' मे पाया जाता है। यद्यपि 'नाट्यशास्त्र' का प्रमुख विवेच्यविषय नाट्यविद्या है, लेकिन प्रसंगवश साहित्य के अनेक अंगों का विवेचन विश्लेषण भी उसमे हो पाया है, जैसे - रस, गुण, अलंकार आदि परंतु मुख्य बल अभिनय पर है। भरतमुनि के अनुसार साहित्य स्वरुप का विवेचन इस प्रकार है -

"मृदुललित पदाढ्यं गूढ शब्दार्थहीनम्।
जनपद सुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्॥
बहुकृतरसमार्ग सन्धि सन्धान युक्तम्।
सम्भवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम्॥

भरतमुनि

अर्थात मृदु पदावली से युक्त, गूढ शब्दार्थ से रहित जनपद के लिए सरलतापूर्वक उपभोग्य, नृत्य में उपयोग किये जाने की योग्यता युक्त, विविध रसों को प्रवाहित करने का गुण, संधियुक्त नाटक को शुभ काव्य कहा है।

परंतु यह काव्य की सामान्य परिभाषा न होकर नाटक के अंतर्गत प्राप्त काव्य के तत्त्वों का निरुपण है। साहित्य-स्वरूप को व्यवस्थित रुप से विश्लेषित करने का प्रथम प्रयास 'अग्निपुराण' में हुआ है। साहित्य की सबसे प्राचीन परिभाषा अग्निपुराण की मानी जाती है। अग्निपुराण की परिभाषा से लेकर प. जगन्नाथ तक के संस्कृत आचार्यों ने दी हुई परिभाषाएँ किसी न किसी संप्रदाय-विशेष से जुडी हुई है। संस्कृत काव्यशास्त्र में पाँच संप्रदाय अधिक महत्व के है - अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, तथा रस संप्रदाय। इन

संप्रदायों ने एक अंगविशेष को ही काव्य की आत्मा मानकर उसे परिभाषित किया है। अग्निपुराण में दि हुई साहित्य की परिभाषा को डा. भगीरथ मिश्र ने सबसे प्राचीन परिभाषा कहा है। अग्निपुराण में काव्य को शास्त्र इतिहासादि से भिन्न बतलाते हुए उसको इस प्रकार स्पष्ट किया है -

संक्षेपादवाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्॥

अर्थात संक्षेप में इष्ट अर्थ को प्रकट करनेवाली पदावली से युक्त वाक्य साहित्य है, जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोषरहित और गुण युक्त हो।

इस परिभाषा में कई दोष है। प्रायः यह परिभाषा काव्य की वाह्य रुप-रेखा स्पष्ट करती है। इनमें पाँच बातों की प्रमुखता दी है - १) इष्टार्थ, २) संक्षिप्त वाक्य, ३) अलंकार, ४) गुणयुक्त, ५) दोष रहित। सर्वप्रथम यह आपत्ति उठाइ जाती है कि इष्टार्थ की अभिव्यक्ति तो सभी कवि अभिव्यक्त करते है परंतु उसका कौनसा अर्थ ग्रहण करे यह बात समाज और श्रोता पर निर्भार होती है। संक्षिप्तता की बात भी आपत्तिजनक है। संक्षिप्त वाक्य स्मरण प्रक्रिया का द्योतक होता है। अलंकार से युक्त होना अलंकार संप्रदाय के प्रभाव की बात है। गुणों से युक्त होना यह काव्य-गुणों के संदर्भ में ठीक है परंतु गुण शब्द अनेकार्थी है तो काव्य को किस गुणों से युक्त समझना यह प्रश्न है। दोष से रहित होना उत्तम काव्य का लक्षण है, परंतु कोई भी मानव कृति पूर्णतः दोषरहित नहीं हो सकती। अंतिम आपत्ति यह उठाई जाती है कि यह परिभाषा अभिधा-शक्ति प्रधान है, जबकि काव्य में व्यंजना और रस की प्रधानता होती है।

इसके बाद अलंकारवादी आचार्यों की परिभाषा देखते है। अलंकार-संप्रदाय के आचार्योंने 'अलंकार' को साहित्य का सर्वप्रमुख तत्व माना है। भामह और दण्डी ने अलंकार को अत्याधिक महत्व दिया है। आचार्य **भामह** को प्रथम काव्य-लक्षण प्रस्तोता का गौरव प्राप्त है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में शब्द और अर्थ के सहित भाव को ही साहित्य कहा है। उनकी परिभाषा इस प्रकार है - **'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'** अर्थात शब्द-अर्थ का संयोग काव्य है, या शब्द और अर्थ का सहित-भाव काव्य है।

यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है, क्योंकि शब्द और अर्थ का सहित भाव तो काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि में भी अपेक्षित रहता है। परंतु वे साहित्य की कोटि में नहीं आते। दूसरी बात यह कि इस लक्षण द्वारा शब्द और अर्थ का संयोग साधारण स्तर का है इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि शब्द ओर अर्थ कैसे होने चाहिए। अतः इस लक्षण मे अतिव्याप्ति दोष है। यह परिभाषा काव्य के अत्यंत व्यापक और बाह्य स्वरूप को स्पष्ट करती है। इसमें साहित्य के अंतरंग तत्त्व 'रस' का उल्लेख नहीं है।

रुद्रट - की दी हुई परिभाषा भी भामह से मिलती-जुलती है। रुद्रट ने लिखा है - **'ननु शब्दार्थौ काव्यम्।'** इस का भी वह भाव है जो भामह का है। रुद्रट ने काव्य को शब्द और

अर्थ का साधारण संयोग ही माना है। यह परिभाषा भी अत्यंत व्यापक होने के कारण अतिव्याप्ति दोष से मुक्त नहीं है।

आचार्य दण्डी - दण्डी ने काव्यलक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुए काव्य शरीर का लक्षण दे दिया है। उन्होंने लिखा है **'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।'** अर्थात ईष्ट अर्थ से युक्त पदावली को काव्य कहते है, या अभिष्ट अर्थ से युक्त पदावली को काव्य-शरीर कहते है।

दण्डी के इस काव्य लक्षण में भी अनेक दोष है। काव्य का शरीर पदावली मात्र नहीं होता बल्कि शब्दार्थ का समन्वित रुप होता है। यहाँ 'इष्टार्थ' से यह प्रयोजन है कि अलंकार-जन्य आल्हाद। दंडी ने काव्य शोभा के उत्पादक धर्म को अलंकार कहा है और 'काव्य-शरीर' शब्द 'काव्य-पुरुष' वाचक रुपक है। अलंकार वाच्यार्था में रस का सिंचन है।

भामह और दण्डी ने अलंकार को काव्य में अत्याधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार काव्य का समस्त सौंदर्य अलंकार है। दण्डी ने **'काव्यदर्शन'** में उसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है -

'काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान प्रचक्षते।'

अर्थात काव्य को शोभा प्रदान करनेवाला धर्म अलंकार है। अलंकार का संबंध भाषा से है और भाषा को काव्य का शरीर माना गया है। तब अलंकार काव्य की आत्मा कैसे। ऐसा प्रश्न उठाया जाता है। जैसे कपडे बाह्य सौंदर्य बढाते है वैसेही अलंकार है। अर्थात अलंकार सौंदर्य के साधनमात्र है।

आचार्य वामन - शब्द और अर्थ को काव्य-शरीर मानकर काव्य की आत्मा खोजने का प्रयास जिन संस्कृत आचार्यों ने किया उनमें रीति संप्रदाय के आ. वामन सबसे आगे है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया है - **'रीतिरात्मा काव्यस्य'** अर्थात काव्य की आत्मा रीति है। रीति कहते है विशिष्ट पद रचना को। पदरचना में विशिष्टता गुणों के कारण आती है। गुण-युक्त पदरचना काव्य की आत्मा है। ये विशिष्ट गुण काव्य शोभा के धर्मों का नाम है वामन इन्हे, 'नित्य अलंकार' कहते है और परंपरागत अलंकार को वे 'अनित्य अलंकार' कहते है। अलंकारवादी आचार्यों और वामन मे यह अंतर है कि अलंकारवादियों ने शोभा करनेवाले धर्म के रुप में अलंकार को माना है जबकि वामन ने गुण के रुप में। अलंकार की भाँति गुण भी काव्य की शोभा बढता है, वह उत्कर्ष स्वरुप है। इस संदर्भ में वामन की सबसे बडी देन यह कही जा सकती है कि जहाँ दण्डी ने 'काव्य-पुरुष' के लिए शरीर का संकेत किया था वहाँ आ. वामन ने 'आत्मा' का संकेत कर काव्य रूप पुरुष में आत्मा की प्रतिष्ठापना की है।

वामन की इस परिभाषा की आलोचना करते हुए यह आपत्ति उठाई जाती है कि रीति तो एक संघटन विशेष है, जिसका महत्त्व काव्य-पुरुष के अवयव से किसी भी रुप में अधिक नहीं है, वह भला काव्य की आत्मा कैसे हो सकती है? दूसरी आपत्ति यह कि रीति

का सम्बन्ध पदों से है और पदों का सम्बन्ध भाषा से है, तब भाषा काव्य का बाह्य तत्व है तब रीति (पद्धति) काव्य की आत्मा कैसे? अतः रीति तत्व काव्य का बाह्य पक्ष का द्योतक है, जिससे काव्य का येथेष्ट स्वरुप स्पष्ट नहीं होता।

आ. आनंदवर्धन - ध्वनि-सिद्धांत के पवर्तक आनंदवर्धन ने 'ध्वनि' को स्पष्ट शब्दों में काव्य की आत्मा के रुप में घोषित किया है। अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर मानकर कहा है - **'शब्दार्थ शरीरं तावतकाव्यम्'** अर्थात शब्द अर्थ रुपी शरीर को काव्य कहते है। आगे आनंदवर्धन ने 'ध्वनिरात्माकाव्यस्य' कहकर शब्दार्थ रुपी शरीर में आत्मा की स्थापना कर दी है। इनके इन दोनों कथनों को संकलित कर काव्य काव्य-लक्षण की परिभाषा इस प्रकार है - "उस शब्दार्थ रुपी शरीर को काव्य कहते है जिसकी आत्मा ध्वनि है।"

आनंदवर्धन ने 'ध्वनि' को आंतरिक अंगी गुण माना है उसका स्पष्टीकरण वे इसप्रकार देते है कि ध्वनि कहते है उस प्रतीयमान अथवा व्यंग्य अर्थ को, जिसे अर्थ (वाच्यार्थ) अपने आप को और शब्द अपनी सत्ता अथव अपने अर्थ (वाच्यार्थ) को गौण बनाकर अभिव्यक्त करते है।

आनंदवर्धन की परिभाषा भी दोष से परे नहीं है। इसमें निहित प्रतीयमान अर्थ और वाच्यार्थ समझने में कठिन है। ध्वनि शब्द का प्रयोग व्याख्यासापेक्ष है। अतः इसकी सीमाएँ अस्पष्ट है। इसे आदर्श परिभाषा नहीं माना जा सकता।

आ. कुंतक - 'काव्य की आत्मा' के संदर्भ में उल्लेखनीय काव्यतत्व है वक्रोक्ति। जिसे कुन्तक ने काव्य का जीवित (आत्मा) स्वीकार करते हुए अपने ग्रंथ में इसी मान्यता के आधार पर **'वक्रोक्ति काव्य जीवितम्'** कहा है। वक्रोक्ति कहते है कवि कोशल्यजन्य चमत्कारयुक्त वैचित्र्यपूर्ण कथन को। दूसरे शब्दों में जो काव्यतत्व किसी कथन में लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न कर दे, उसका नाम वक्रोक्ति है। लोकवार्ता से या लौकिक सामान्य वचन से विशिष्ट कोई भी कथन वक्रोक्ति के अंतर्गत आ सकता है। अतः कुंतक की दृष्टि से प्रत्येक वक्रोक्ति सुंदर उक्ति है, और प्रत्येक सुंदर उक्ति वक्रोक्ति है। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापारशालिनि।
बन्धो व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाल्हादकारिणि।।"

अर्थात उस शब्दार्थ को काव्य कहते है जो सहित-परस्पर सम्बद्ध हो। इन्हें अर्थात कवि कौशल्य जन्य चमत्कारयुक्त कथन विशेष से युक्त होना चाहिए तथा ऐसे बंधन में व्यवस्थित हो जो सहृदय जनों के लिए आल्हादक हो।

कुंतक ने वक्रोक्ति तथा सहृदय-आल्हादकता इन दो तत्त्वों पर अधिक जोर दिया है। सहृदयी जनों को आनंद न देनेवाली वक्रोक्ति को पसंद नहीं करते। उनका सर्वाधिक बल वक्रोक्ति पर है।

कुंतक की इस मान्यता पर **'साहित्यदर्पण'**कार विश्वनाथ ने कहा है कि 'वक्रोक्ति तो एक अलंकार मात्र है, वह भला काव्य की आत्मा कैसे हो सकती है? वास्तव में कुंतक की वक्रोक्ति कोई उपमा, रुपक अलंकार की तरह न होकर वह एक अपूर्व अलंकार है, तो दूसरी ओर विचित्राभिधा है। फिर भी कुंतक के दिए हुए काव्य लक्षण रीति सिद्धांत के समान बाह्य तत्त्व पर बदलनेवाले है। इसीलिए वे काव्य की आत्मा नहीं हो सकते।

केवल टेढा मेढा कथन घुमा-फिराकर कहने मात्र से काव्य की आत्मा नहीं बन पाता। मीराँ, तुलसी आदि कवियां के काव्य में कोई वक्रोक्ति नहीं है तो क्या उनका साहित्य लोकोपयोगी नहीं है? अतः वक्रोक्ति उक्ति-वैचित्र्य सहृदयी को प्रभावित करने के लिए ठीक है, परंतु वह काव्य का आवश्यक गुण नहीं हो सकती।

आ. मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में व्यवहारिक दृष्टि से साहित्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए कहा है -

"तददौषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृति पुनः क्वापि"

अर्थात काव्य वह शब्दार्थमयी रचना है, जिनमें दोषों का अभाव हो, गुणों का उचित समावेश हो और प्रायः अलंकार का चमत्कार हो कभी-कभी अलंकार से रहित हो।

आ. विश्वनाथ, जयदेव, पंडित जगन्नाथ ने मम्मट की परिभाषा पर आपत्ति उठाई है और कहा है कि **'अदोषौ'** वाली बात क्या है? जब मानव ही दोष रहित नहीं है तो उसके द्वारा रचित रचना सर्वथा दोषरहित कैसी होगी? यदि हो भी तो उसमें व्यक्ति भिन्नता की भाँति रुचि भिन्नता में कोई न कोई दोष निकल ही आता है। तो क्या अनेक गुणों से युक्त कृति मे एकाद दोष निकला तो उस कृति को काव्य के क्षेत्र से बाहर कर दे? जयदेव ने 'अलंकार रहित' बातों पर प्रहार करते हुए कहा है कि अलंकार रहित भावना ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार अग्नि को उष्ण रहित मानना। एक दृष्टि से यह बात काव्य में अलंकार को अनिवार्य माननेवालों का विरोध करना है। **'सगुणौ'** शब्द भी काव्य की कोई महत्वपूर्ण विशेषता प्रकट नहीं करता। 'सदगुणौ' बडा व्यापक शब्द है। **'शब्दार्थौ'** पर भी जगन्नाथ ने आपत्ति की है। उन्होंने कहा है कि 'शब्द ही काव्य है, न कि शब्दार्थ।' इस तरह यह परिभाषा भी परिपूर्ण नहीं मानी जाती।

इसी प्रकार की परिभाषा आचार्य हेमचंद्र ने अपने ग्रंथ 'काव्यानुशासन' में दी है जो मम्मट की परिभाषा से बहुत मेल खाती है - **'अदोषो सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्'** अर्थात दोष रहित गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ काव्य है। वास्तव में यह परिभाषा भी परिपूर्ण नहीं है। इसमें मम्मट का ही भाव उतारा गया है। काव्य के एक सीमित क्षेत्र को ही यह परिभाषा अपने भीतर समेट लेती है।

आचार्य विश्वनाथ - रस को काव्य की आत्मा के रुप में अपनानेवाले आचार्यों में से विश्वनाथ प्रमुख है। उन्होंने आनंदवर्धन, कुन्तक और मम्मट जैसे आचार्यों के काव्य-लक्षणों का खंडन कर एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और साहित्य को परिभाषित करते हुए

कहा **'वाक्य रसात्मक काव्यम्।'** अर्थात रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। रस को काव्य की आत्मा घोषित कर विश्वनाथ ने भरतमुनि से लेकर अपने समय तक के चले आ रहे रस के प्रति समादर-भाव को अपनी परिभाषा में प्रस्तुत कर काव्यशास्त्रियों की नब्ज पकडी है। विश्वनाथ के पूर्ववर्ति आचार्यों ने काव्य-लक्षण में रसात्मकता के अंतर्गत रस और अलंकार का समावेश किया है। मम्मटने रस को अप्रत्यक्ष पद्धति से स्वीकारा भी था, अब विश्वनाथ ने मात्र खुलकर मान्यता प्रदान की है।

रस को काव्य की आत्मा मानने का कारण यह कि सभी काव्यतत्व रस की पुष्टि करते हैं। भरतमुनि ने 'आस्वादन' को रस कहा है। आनंदवर्धन, मम्मट के अतिरिक्त अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति के आचार्यों ने भी रस की सत्ता को स्वीकारा है। वास्तव में काव्य का अस्तित्व रस पर निर्भर होता है। बिना रस कोई वाणी काव्य नहीं कहलाती। रस काव्यास्वादन की प्रक्रिया में उत्पन्न होकर सहृदयी पर भी प्रभावित होता है। रस का यह सम्बन्ध हृदय के विभिन्न भावों (विभाव, अनुभाव, संचारी) से जुडा होने के कारण जब कोई सहृदयी व्यक्ति काव्य का आस्वादन करने लगता है तब उनके ये भाव उद्दिप्त होकर आनंद की अनुभूति करने लगते हैं। इस ही रसानुभूति कहते है। रस को जहाँ काव्य की आत्मा माना गया है वहाँ वह 'काव्यानंद' 'काव्यल्हाद' के अर्थ में भी स्वीकृत है। यह काव्यानंद सहृदयी के साथ रचयिता को भी प्राप्त होता है।

रस अन्य काव्य-तत्त्वों की अपेक्षा कहीं अधिक आंतरिक तत्त्व है। इसी कारण भी वह काव्य की आत्मा कहलाने का अधिकारी है।

इसपर आक्षेप लगाते हुए यह कहाँ गया है कि रस भी कोई काव्यगत तत्त्व नहीं है; वह काव्यास्वादन की प्रक्रिया से निर्मित बाह्य तत्त्व है, जिसका स्थिति सहृदयी के मनमे मानी गई है ऐसी स्थिति में उसे काव्य की आत्मा कैसे स्वीकार करे? व्यापक दृष्टि से जिस किसी वाक्य में रस का अविर्भाव हो उसे काव्य मानने लगे तो काव्य के क्षेत्र में बडी गडबडी हो जाएगी और अनेक काव्य पंक्तियों को इस क्षेत्र से बाहर निकाला जाएगा। बिहारी और केशवदास की अनेक पक्तियों में रस का निर्वाह नहीं हुआ है। परंतु अलंकार, उक्ति-वैचित्र्य-चमत्कार से युक्त है। क्या इन्हे काव्य से बाहर कर देंगे। अतः आक्षेप चाहे कुछ भी हो परंतु काव्य में रस का होना महत्वपूर्ण है चाहे कौनसा भी रस हो। आत्मा के बिना शरीर का महत्व नहीं है वैसे ही रस के बिना काव्य का।

आचार्य जगन्नथ - संस्कृत के अंतिम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ रस-ध्वनि-सिद्धांत के समर्थक थे परंतु उन्हों ने अपनी काव्य परिभाषा में 'रस' शब्द का प्रयोग न करके कहा है - **'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'** अर्थात रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है। रमणीयता जिसे वामन ने सौंदर्य, दण्डी ने इष्टार्थ, आनंदवर्धन कुंतक ने लोकोत्तर आल्हाद कहा है। इसे काव्य का महान तत्त्व माना गया है। काव्य शास्त्र में जहाँ बार-बार चमत्कार शब्द का प्रयोग हुआ है वह रमणीयता का पर्यायवाची है। सौंदर्य और

चमत्कार काव्य के बाह्यांग है तो लोकोत्तर आल्हाद (आनंद) अंतर्गत भाव है। यह लोकोत्तर आनंद काव्य से प्राप्त होता है, जो लौकिक आनंद से पृथक होता है।

इस पर कुछ आचार्यों ने आक्षेप किया कि जगन्नाथ ने 'शब्दार्थ' के स्थान पर 'शब्द' को काव्य माना है। काव्य के शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता नहीं होती बल्कि पुरे वाक्य पर निर्भर होती है क्योंकि पूर्णबोधक वाक्य ही होता है, शब्द नहीं, शब्द तो वाक्य की सबसे छोटी इकाई होती है। इस सीमा को दृष्टि में रखकर यदि उनके काव्य-लक्षण को संशोधित करके 'रमणीयार्थ प्रतिपाक शब्दार्थों काव्यम्' कह दिया होता तो उचित होता क्योंकि रमणीयता के प्रतिपादक शब्दार्थ को ही काव्य की संज्ञा दी जाती है। दूसरा आक्षेप विश्वनाथ तथा जगन्नाथ के काव्य-लक्षण पर यह है कि उन्होंने क्रमशः रसात्मकता और रमणीयता को काव्यत्व का जो आधार माना है, ये दोनो गुण भी अनिश्चित एवं अस्पष्ट है, क्योंकि रसात्मकता और रमणीयता तो अन्य क्षेत्र में भी होती है। जैसे कि एक रसिक व्यक्ति के लिए अपनी प्रियतमा के द्वारा उच्चारित कुछ शब्द भी रसात्मक एवं रमणीय हो सकते है, क्या इसे भी हम काव्य की कोटि में रखे? अतः ये दोनों परिभाषाएँ भी अतिव्याप्ति दोष-युक्त है।

इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य की परिभाषा मुख्यतः आनंद तत्व पर आधारित रही है। सभी की दृष्टि आल्हाद या आनंद पर केंद्रीत रही है। यदि संस्कृत के सभी आचार्यों की परिभाषाओं का सार तत्त्व लेकर एक सामूहिक परिभाषा दी जाए तो वह इस प्रकार दी जा सकती है - **'रमणीय शब्दार्थ से युक्त सरस वाणी ही काव्य है।'**

अतएव हम देखते है कि आचार्य भामह से लेकर जगन्नाथ की परिभाषिक काव्य-लक्षणों में क्रमिक विकास तो दृष्टिगत होता है किंतु उनमें सर्वथा निर्दोष कोई भी नहीं है। इन सारे संप्रदायी आचार्यों के अतिरिक्त आचार्य क्षेमेंद्रने 'औचित्य' तथा महिमभट्ट ने 'अनुमिति' को काव्य की आत्मा मानी है।

हिंदी के आचार्यों एवं आधुनिक विद्वानों द्वारा पुस्तक काव्य परिभाषाएँ :

हिंदी के मध्यमकालीन (रीतिकालीन) आचार्यों ने भी काव्य की परिभाषा देने का प्रयास किया है, परंतु उनकी परिभाषा में कोई मौलिकता नहीं है। उन्होंने संस्कृत के आचार्यों द्वारा प्रस्तुत काव्य-लक्षणों का ही अपनी भाषा-शैली में छायानुवाद-सा किया है, जिन में केशवदास चिंतामणी, कुलपति, देव आदि उल्लेखनीय है। आधुनिक हिंदी के विद्वानों में प्रस्तुत काव्य-लक्षण (परिभाषा) मात्र विशेष विशेताओं से परिपूर्ण है, फिर भी इन पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। आचार्य केशवदास ने कोई परिभाषा तो नहीं दी है, परंतु अलंकार संप्रदाय के अलंकार की महत्ता प्रतिपादीत की है। वे कहते है -

"यद्यपि जाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुकृत।
भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्त॥

अर्थात जिस तरह सुजाति, सुलक्षणी, सुवर्णी तथा सरस होने के पश्चात भी कोई सुंदरी

अलंकारों से रहित सौंदर्यवती (रमणीय) नहीं लगती, उसी प्रकार कविता अन्य गुणों से युक्त होने पर भी अलंकार के बिना रमणीय नहीं लगती।

आचार्य चिंतामणी ने अपने ग्रंथ 'कविकुलकल्पतरु' में काव्य की आत्मा को प्रस्तुत करते हुए आचार्य मम्मट की परिभाषा का अनुवाद मात्र प्रस्तुत किया है -

"सगुण अलंकारन सहित, दोषरहित जो होइ।
शब्द अर्थ वारी कवित, विबुध कहत सब कोई॥

आचार्य मम्मट की परिभाषा 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृति पुनः क्वापि' का अनुवादित अर्थ मात्र इस का अर्थ है।

आचार्य कुलपति - काव्य प्रकाश का अनुकरण करते हुए लिखा है कि, "दोषरहित, गुणसहित कुछ अल्पअलंकार सहित शब्दांश काव्य है।"

आचार्य देव ने कोव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है -

"शब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमत सुजस शरीर।
चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गम्भीर॥"

यहाँ देव ने काव्य पुरुष रुपक का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। शब्द जीव है और अर्थ मन रस से युक्त सुयश उसका शरीर है। वर्णिक और मात्रिक दोनों छंद उसकी गति है और अलंकार उस गति की गम्भीरता है।

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है - "जब मनोभाव शब्दों का रुप धारण कर लेते है, तब कही कविता कहलाने लगती है, चाहे वह पद्यात्मक हो या गद्यात्मक।"

इस परिभाषा में मनोभाव बडा व्यापक शब्द है। मन में सैकडों भाव उभरत है इन सभी को काव्य-कोटि का समझना अनुचित है। यहाँ कवि ने गद्य-पद्य में भी कोई अंतर नहीं किया है, जबकि दोनों में मौलिक अंतर है। कौनसे मनोभाव गद्य और कौनसे पद्य समझना मुश्किल है।

आ. रामचंद्र शुक्लने 'कविता क्या है' में लिखा है "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है। उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।"

स्पष्टीकरणार्थ हम कहते है कि -

१) आत्मा की मुक्तावस्था - ज्ञानदशा है

२) हृदय की मुक्तावस्था - रस दशा है

३) हृदय की मुक्तावस्था के लिए अर्थात रस प्राप्ति के लिए या आनंद प्राप्ति के लिए या रसास्वाद के लिए काव्य निर्मिती। उत्कृष्ट काव्य, नाटक, उपान्यास, आदि को पढते समय उस काव्य में निहित रस-भाव (पात्र आदि का उद्वेग, पीडा, हर्ष, उत्साह, भय, हास्य) से

हमारा स्थायी भाव का तादात्म्य स्थापित हो जाता है हम एकाकार होते है कुछ क्षण के लिए हम अपनी पीडा, अहं चिंता को भूल जाते है। हम हम नहीं रह जाते जो पढने को पर्व थे। हमारी संवेदना का विस्तार हो जाता है। हम में थोडा और मनुष्यत्व का भाव आता है, हम अपने आपको थोडा ऊपर उठे है।

ऐसा महसूस करते है तब यही हृदय की मुक्तावस्था कहलाती है। यही रस दशा है। कोई भी अच्छी रचना पढने के बाद पाठक वही नहीं रहता जो पढने के पहले था। आत्मा की मुक्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता है।

अज्ञानी व्यक्ति मोह-माया के बंधन में उलझ जाता है, जिसके कारण कर्तव्य पथ से विमूढ हो जाता है, भटकता है। इसी से मुक्ति के लिए साधक (सहृदयी) मे ज्ञान की तृष्णा जाग जाए, जिस से अज्ञान से लोहा लिया जा सके। सहृदयी के मनमें इस प्रकार का भाव जागृत करनेवाली कविता ही काव्य की आत्मा कही जा सकती है। ऐसे शुक्लजी का मत है।

परंतु यह परिभाषा साधारण पाठक के समज के बाहर की है। इसमें विहित आत्मा की मुक्तावस्था, हृदय की मुक्तावस्था, ज्ञान दशा, रस दशा आदि अध्यात्मीक बाते अति बौधिकता के परिचायक है। फिर भी यह परिभाषा मूलभूत चिंतन से युक्त है। मानवीय रागों का परिष्कार करना ही काव्य का उद्देश्य उन्होंने स्वीकारा है।

सुमित्रानंदन पंत ने बहुत ही सरलता से काव्य की परिभाषा प्रस्तुत की है - **'कविता हमारे परिपूर्ण क्षण की वाणी है'**

पंतजी की इस परिभाषा में अतिव्याप्ति का दोष है। परिपूर्ण क्षण हम कौनसा समझे यह निश्चित नहीं है.....।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य का लक्ष्य मनुष्य और उसका जीवन ही होना चाहिए कहा और वह मनुष्य का आत्मबल बढानेवाला हो तथा मनोरंजनवादी विचारों से दूर, आत्मभाव जगानेवाला पर दुःखों से द्रविभूत हमारी संवेदनाओं का विस्तार करने में सक्षम हो। उनके अनुसार - "जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचाए, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त बनाए, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील बनाए उसे साहित्य कहना चाहिए।"

श्यामसुंदरास के अनुसार - **"काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करे।"**

श्यामसुंदरजी ने अलौकिक आनंद पर बल दिया है। मन पर प्रभाव जमाने के लिए उसमें चमत्कार अर्थात अर्थालंकार आदि का भाव हो यह अपेक्षित है। उच्च कोटि का काव्य उन्हें अभिप्रेत है क्योंकि हृदय को अलौकिक आनंद की प्राप्ति तो उच्च प्रति के काव्य से ही मिलती है। क्षणिक आनंद या मनोरंजन तो सामान्य रचनाएँ करती है।

जयशंकर प्रसाद के अनुसार **"काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञानधारा**